साहित्यसुधा
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की रचना स्थली
वर्ष: 2, अंक 37, मई(द्वितीय), 2018

घुटने का दर्द

महेश चंद्र द्विवेदी

मै वानप्रस्थ योग संस्थान का सदस्य हूं. आप अगर कान्वेंटी अंग्रेज़ीदां है तो हो सकता है कि आप को 'वानप्रस्थ योग संस्थान' के शुद्ध हिंदी के अल्फ़ाज़ दक्षिण अफ़्रीका के ज़ूलुओ की बोली के लफ्ज़ लगे हों या किसी उरांग-उटान की घुड़की जैसे लगे हों, इसलिये मैं माफ़ी मांगते हुए खालिस हिंदुस्तानी में बताना चाहता हूं कि अधबूढ़े लोगो को वानप्रस्थी कहा जाता है, गेरुआ कपड़े पहिनने वाली एक मशहूर शख़्सियत, जिसे उत्तर-प्रदेश की 'बहिन जी' 'प्यार' से 'वह कसरती बाबा' कहतीं हैं, की कभी हाथ-पांव को टेढ़ा-मेढ़ा हिलाने-डुलाने, कभी नाक से धौंकनी चलाने और कभी पेट पिचकाकर आंतो को चकरघिन्नी बनाकर बचकाना हरकतें करने को योग कहा जाता है, और संस्थान का मतलब हुआ हम जैसे दस-बीस निठल्ले लोगों का *टाइमपास* की गरज़ से लगाया जाने वाला जमघट. उस 'कसरती बाबा' का दावा है कि इन बचकाना हरकतों के करते रहने से बड़े-बड़े लाइलाज मर्ज़ दूर हो जाते हैं और हाथ-पैर के जोड़ों के दर्द तो बिलकुल ही नहीं सताते हैं. मैं दावों में कम और दवाओं मे ज़्यादा यकीन रखता हूं. फिर भी मैंने इस जमघट मे शरीक़ होते वक़्त 'उस कसरती बाबा' की इतनी बात पर ज़रूर यकीन किया था कि सबेरे आने वाली सबसे प्यारी नींद का सत्यानाश कर इस संस्थान में कराई जाने वाली ये नामाकूल सी हरकतें चाहे मुझे दूसरे मर्ज़ों से निजात न दिला सकें, पर बुढ़ापे की उम्र मे होने वाले रोज़ रोज़ के दर्दों से ज़रूर महफ़ूज़ रखेंगी. मेरा यह क़यास कुछ सालो तक सही भी साबित हुआ और मै रोज़ सुबह स्लीपवेल के गुदगुदे पलंग को छोड़कर पगहा तुड़ाये बैल की तरह इस संस्थान को जाता रहा.

बुढ़ापे में आदमी की सबसे बेवफ़ा हमसफ़र होती है, उसकी उम्र. चाहे आदमी अपनी सारी दौलत उस पर लुटाता रहे,पर बिना किसी रहम के लम्हां-लम्हां आगे बढ़ती रहती है और हर जाते हुए लम्हें के साथ आदमी को और बूढ़ा बनाती रहती है. मेरी उम्र भी वैसी ही संगदिल निकली. मेरे द्वारा वानप्रस्थ संस्थान मे किये जाने वाले सारे आसनो-प्राणायामो के बावजूद पारसाल एक दिन मेरी उम्र ने मुझे पचहत्तर के पार करा ही दिया. यानी कि वानप्रस्थ से सन्यास की उम्र में ढकेल दिया. मैं उस धक्के को हंसते हुए सहूं, इस मक़सद से जहां में मेरे नमूदार होने की उस मामूली सी तारीख को मेरे चाहने वालों और वानप्रस्थ संस्थान के साथियों ने खास बनाने की हर मुमकिन कोशिश की और मुझे मुबारकों के अलावा तोहफों से भी पाट दिया.

मुबारिकी की इस बौछार की वजह ढूंढते हुए मुझे ऐसा भी लगा कि मेरे चाहने वालों ने तो नादानी में मुबारकबादी की होगी क्योंकि उनमें तकरीबन सभी मेरे से कम उम्र के होने की वजह से सन्यास की उम्र के बारे में नातजुर्बेकार थे और वानप्रस्थ योग संस्थान के मेम्बरान की मुबारकबादी की वजह शायद यह खुशनूद अहसास रहा होगा कि अपने नाम के मुताबिक वानप्रस्थ की उम्र तो हमने खैरियत से कटवा दी, और आगे की उम्र का ठेका तो हमने ले नहीं रखा है. बहरहाल हुआ यह कि मेरे सन्यास की उम्र में दाखिल होने का जश्न खत्म हुए अभी महीना भर ही बीता था कि एक दिन गौल्फ़ की बौल में शौट मारने के बाद मेरे बाँये कंधे मे दर्द होने लगा. घर लौटकर जब बीवी को बताया, तो पहले तो बोली,

'कितनी बार कहा है कि अब जवानी की उम्र नहीं रही है, इसलिये हल्के शौट्स लगाया करें. पर आप ज़नाना खिलाड़ियों को *इम्प्रेस* करने की कोशिश से बाज आयें तब तो रुकें.'

फिर मेरा उतरा हुआ चेहरा देखकर सिलबट्टा लाकर बोली,

'कहां दर्द है, लाओ नज़र उतार दूं. किसी परकटी खिलाड़ी की नज़र लग गई होगी.'

मेरे लाख कहने पर कि 'आज कोई महिला खिलाड़ी आयी ही नहीं थी, वह नहीं मानी और पूरे सात बार उस सिलबट्टे को मेरे कंधे के चारों ओर गोल-गोल घुमाने के बाद ही मानी.'

नज़र तो तब उतरती जब लगी होती, इसलिये दर्द दूर तो क्या होता रत्ती भर कम भी न हुआ. मेरा गौल्फ़ खेलना बंद हो गया. यह दर्द अपने साथ मेरे लिये एक आफ़त और लाया. जब किसी खैरख्वाह को मेरे कंधे के दर्द का पता चलता, वह मातमपुर्सी के लिये मेरे घर तशरीफ़ लाकर कोई न कोई दवाई, मलहम, काढ़ा या इंजेक्शन बता जाता. इनमें जिस किसी का नुस्खा मेरी नेक बीवी सुन लेती तो तुरंत उसके तैयार करने मे लग जाती, और मुझे मन मारकर और नाक-भौं सिकोड़कर वह इलाज मजबूरन बरदाश्त करना पड़ता.

मुझे किसी काढ़े, टोटके या इंजेक्शन से कोई फ़ायदा होता हुआ महसूस नहीं हुआ, पर महीने भर बाद न जाने क्यूं दर्द इतना कम हो गया कि मैं आसन-प्राणायाम कर सकूं और गौल्फ़ भी खेल सकूं. दूसरे दिन योग संस्थान में जब मेरी वापसी हुई तो साधकों ने मेरा हालचाल बड़ी हमदर्दी और नेकदिली से पूछा, पर दोपहर बाद जब गौल्फ़ खेलने गया तो साथियों ने तंज़ करते हुए कहा कि अरे इतने छोटे-मोटे दर्द के लिये एक महीने की गैरहाज़िरी कुछ ज़्यादा ही नज़ाकत बयां करती है. इस पर मुझे कुछ शर्मिंदगी सी महसूस हुई, और अपने बचाव में मैने कहा,

'क्या करता रोज़ रोज़ जब खेलने आने की सोचकर पलंग से उठता था तो कभी कंधे में, कभी गर्दन में या कभी पीठ में दर्द होने लगता था.'

मेरी बात पूरी होते होते उनमें से एक संगदिली से बोल उठा,

'देखिये द्विवेदी जी, अब आप बूढ़े हो गये है, इसलिये जब भी उठेंगे, तभी कहीं न कहीं दर्द होगा. और किसी दिन उठें और कहीं दर्द न हो तो समझ लेना कि उठ गये हैं.'

उस मुए की ज़बान मे न जाने कौन सा शैतान बैठा था कि हफ़्ते भर बाद ही मेरे घुटने में दर्द शुरू हो गया. मेरी बीवी की झाड-फूंक, तेल-मालिश, सिंकाई और हकीम-डाक्टरों के शर्तिया इलाज के वादों के बावजूद हालत यह है कि मैं अब बिना छड़ी के चार-छः कदम भी नही चल पाता हूं. नतीजतन यह दर्द मेरे बदन के अलावा मेरी रूह को भी रोज़-रोज़ छलनी कर रहा है. अभी तक आते-जाते जब किसी हसीना से सामना पड़ जाता था, तो मेरे *गार्निये* से काले किये बालों के धोखे में आकर वह मुझे अंकिल कह देती थी, पर अब उनमें एक भी बाबा से नीचे उतरती ही नहीं है.

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें